REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

स्वतंत्रता पश्चात हिन्दी रंगमंच में परिवर्तन का अध्ययन

धीरेन्द्र पाल सिंह
शोध छात्र , नाट्य विभाग , राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर , राजस्थान.

प्रस्तावना :

स्वतंत्रता के बाद भारत में कई परिवर्तन शुरू हो गये थे। अंग्रेजों के शासन से त्रस्त भारतीय जनता को उनके कुचकों प्रताड़नाओं, विध्वंसों, भेदभावों, लूट हत्या आदि ने बहुत बैचेन, हताश व कमजोर बना दिया था। आजादी के बाद जनतांत्रिक पद्धति से भारतीय जनता को बहुत उम्मीद थी। यह उम्मीद जगना स्वाभाविक भी था, पर यह उम्मीद जल्दी ही नाउम्मीद में बदल गई।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दुस्तान में एक भौगोलिक परिवर्तन भी हुआ। धर्म के आधार पर वतन को दो टुकड़ों में विभाजित किया गया 'पाकिस्तान' नामक एक नये राष्ट्र का नवनिर्माण किया गया। इस घटना के कारण देश में साम्प्रदायिकता जैसे समस्या का जन्म हो गया, जिस का भविष्यकालीन हिन्दुस्तानी समाज का गहरा असर पड़ा है। आजादी के बाद घटित इस दुःखद घटना का प्रभाव भारतीय रंगमंच पर निश्चित रूप से पड़ा है आजादी के बाद महात्मा गाँधी ने अपने मोहभंग की घोषणा की ओर कांग्रेस पार्टी को विसर्जित करने की बाद स्पष्ट की। इसी की वजह से उनकी खूब निंदा की इतना ही नहीं बल्कि 30 जनवरी 1948 को महात्मा गाँधी को नाथूराम गोडसे द्वारा गोली मारकर हत्या कर दी गई।

महात्मा गाँधी की हत्या के बाद साम्प्रदायिकता और जातिवाद की जड़े मजबूत होती गयी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में नेताओं में जातिवाद का संचार हुआ और मतदाताओं की जाति, भाषा सम्प्रदाय और धर्म आदि को ध्यान में रखकर चुनाव में विधायकों को खड़ा किया जाने लगा। स्वतंत्रता के बाद रंगमंच या हिन्दी साहित्य में इन्हीं सभी समस्याओं का प्रतिबिंब दिखाई देने लगा। जनता के साथ धीरे–धीरे वैसा ही व्यवहार राजनीतिक व्यवस्था करने लगी जैसा पूर्व में हो रहा था जनता को राजनीतिक व्यवस्था के कार्यों से शनैः शनै पता चल गया कि सत्ता बदली है व्यवस्था नहीं। कर्ता नये थे पर कार्य वैसा ही कर रहे थे जैसा पूर्व में हो रहा या कहने का तात्पर्य– कहने को सब नया था लेकिन वास्तव में नया कुछ भी नहीं था। पुरानी चीजों पर नया आवरण चढ़ाया गया था, जो कुछ दिनों बाद ध्वस्त हो गया। पुरानी वस्तु पुनः अपने मौलिक एवं पुरातन स्वरूप में लौट आई थी।

वीणा गौतम कहती है, ''दूरदर्शी नेताओं के नेतृत्व में भारतीयों ने स्वाधीनता का लक्ष्य तो प्राप्त कर लिया, किन्तु यह स्वाधीनता मात्र सत्ता का हस्तान्तरण थी।'' इसलिए आज के बाद राजनीतिक अव्यवस्थाओं की भर्त्सना करने वाले नाटक खूब लिखे गये।

स्वतंत्रता पश्चात हिन्दी रंगमंच पर यह तो प्रभाव था ही साथ ही प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों नाट्य तत्वों का प्रभाव दिखाई देता है। इस युग के रंग लेखकों तथा रंगकर्मियों ने परम्परागत परिपाटी को स्वीकारते हुए मौलिक चिन्तन भी किया है। रंगमंच में जो परिवर्तन आया वह स्वतंत्रता के बाद ही आया।

नाटककारों ने ना केवल लोक की नब्ज पहचानी बल्कि उसी की रोजमरें की जानी पहचानी, भाषा में उसे कहीं भीतर से छूने की पद्धति पकड़ी, भाषा के स्तर पर उसकी अस्पष्टता के गढ़ तोड़ने में अश्क को सफलता मिली। डॉ. दशरथ ओझा कहते हैं कि ''स्वतंत्रता के पूर्व के साहित्य में आजादी पाने की जो विकलता थी, परतंत्र होकर जीने की जो कुण्ठा थी, स्वतंत्रता के बाद उसमें एक नई चेतना आई। जिसका प्रभाव नाटकों और रंगमंच पर भी पड़ा। स्वतंत्रता के बाद पूरे भारत वर्ष में विशेषकर हिन्दी क्षेत्र की स्थिति में मनोदशा में एक अपूर्व परिवर्तन आया, स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत यहां जो नई सांस्कृतिक चेतना जगी, उसमें नाटक विषयक नवोन्मेष का सत्य पर उल्लेखनीय है।''

इस काल में नाटककार पूरे समाज को अपने नाटकों के साथ जोड़ना चाहते थे इसलिए समाज और समुदाय को अपने नाटकों से जोड़ कर उस समय की आर्थिक, राजनैतिक, साहित्य, सामाजिक आदि सभी गतिविधियों से मानवों को परिचित कराया। इन नाटकों के विषय में डॉ. नगेन्द्र का मत है कि अनेक आकर्षक रूढ़ियों के भीतर सत्य का रूप छिप गया है, यह रूढ़ि के परदे को फाड़कर उसे दिखलाने का प्रयत्न करता है। इन नाटकों का आधार समाज रहा, सभी नाटककारों ने अपनी–अपनी कृतियों में समाज को उसके विभिन्न स्वरूपों में प्रदर्शित किया। इस समय हिन्दी नाट्य सृजन में एक ऐसा नया मोड़ आया, जिसके कारण किसी पुराने परम्परा की नाट्य शैली के भीतर उन्हें नहीं रखा जा सकता था, शायद यही कारण है कि रंगमंच एक नये रूप में सामने आने लगा। जो लोगों को प्रभावित भी करने लगा।

स्वतंत्रता के बाद का हिन्दी नाट्य साहित्य एक आजाद देश का साहित्य है। इस दृष्टि से वह विगत साहित्य से भिन्न है। व्यापक स्तर पर आजादी के बाद का नाट्य साहित्य भी आधुनिक साहित्य ही कहलाता है। आधुनिक कालीन साहित्य पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचंद ने 30 सितम्बर 1929 को श्री केशोराम सब्बरवाल को पत्र द्वारा लिखा था "मगर हिन्दुस्तान कला के सर्वोच्च शिखरों पर नहीं पहुँच सकता जब तक कि वह विदेशी दासता के जुए के नीचे कराह रहा है। यही एक पराधीन देश का साहित्य एक स्वाधीन देश के साहित्य से अलग दिखाई देने लगता है। हमारी सामाजिक परिस्थितियाँ हमें विवश करती है कि जहाँ भी हमें अवसर मिले, हम लोगों की शिक्षा है। भावना जितनी ही प्रबल होती है, कृति उतनी ही शिक्षापरक हो जाती है।"

प्रेमचन्द के इस पत्र से यह स्पष्ट होता है कि आजादी के पश्चात् साहित्यकार 'कलात्मकता' की ओर अधिक झुके हुए है। इसके साथ भारतीय रंग–जगत की महत्वपूर्ण घटना यह है कि सांस्कृतिक विरासत के निमित, संगीत नाटक अकादमी की स्थापना 1954 में हुई तथा 1956 में अकादमी ने प्रथम अखिल भारतीय गोष्ठी का आयोजन किया था, इस गोष्ठी ने पहली बार विशाल भारतीय रंगमंच की विविधता और उसकी समृद्धि को उद्घाटित किया। रंगमंच में पहली बार विभिन्न भाषा क्षेत्रों के नाटककार निर्देशक, अभिनेता और नाट्य समीक्षक एक मंच पर मिले और उस पारस्परिक विनिमय का सूत्रपात हुआ, जो अगले दशक में और अधिक तीव्र हो कर एक व्यापक राष्ट्रीय चेतना के रूप में प्रतिफलित हुआ।

सन् 1959 ई. में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (National School of Drama) और 'एशियन थियेटर इंस्टीट्यूट' की स्थापना हुई। आगे चलकर यही राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय देश के शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय का एक स्वायत संगठन बन गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पास अभिनय प्रदर्शन के लिए स्वयं के प्रेक्षागृह भी थे। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की तरह देश के बड़े महानगरों में ड्रामा स्कूल की स्थापना हुई। जिससे नाट्य लेखन तथा रंगमंच के विकास की गति बढ़ी। सन् 1966 में कलकत्ता में 'अदाकार' की स्थापना की गयी।

बहुभाषीय नाट्य संस्था इंडियन नेशनल थियेटर बंबई ने भी हिन्दी में कुछ नाटक किये। बंबई के थियेटर ग्रुप तथा थियेटर युनिट ने भी हिन्दी को कुछ नये नाटक दिये, मुंबई रंगमंच पर इब्राहीम अल्का जी तथा सत्यदेव दुबे निर्देशक के रूप में उभर कर सामने आये। कलकत्ता में तरूण संघ अनामिका और बिड़ला क्लब हिन्दी नाटकों के साथ सामने आये, इन संस्थाओं ने विष्णु प्रभाकर उपेंद्रनाथ अश्क, तरूण राय धर्मवीर भारती, रमेश मेहता, विनोद रस्तोगी, सत्येन्द्र शरद और मोहन राकेश के नाटक मंचन किये गये। इसके साथ ही कुछ नये नाटककार व निर्देशक का भी जन्म हुआ श्रीमती शीला भाटिया, बलवंत गर्गी हबीब तनवीर आदि। हिन्दी का नाट्य आंदोलन संपूर्ण उत्तर भारत में फैल गया। प्रत्येक नगर में नई–नई नाट्य संस्थायें खुलने लगी। इसके साथ नये–नये नाटककार सामने आये तथा नये नाट्य निर्देशक भी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद ही नाटक पूर्णतः दृश्य काव्य के रूप में रंगमंच के संदर्भ में ही अपेक्षित जाना जाने लगा। नाटक, नाटक न रह कर रंग नाटक हो गया, रंगकर्मी सचेत हुए। रंगमंच की एक

नई पहचान हिन्दी दर्शक तथा पाठक वर्ग से कराई गई। नाटक अब स्टडी रूम, पाठ्य पुस्तकों से बाहर आकर रंगशालाओं में आ गया और फिर धीरे–धीरे सड़कों तथा नुक्कड़ों तक पहुंच गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नाट्य कला का प्रशिक्षण देने से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से प्रशिक्षण प्राप्त कर कलाकार बाहर काम करने लगे। रंगमंच के विभिन्न आयामों का प्रशिक्षण से रंगमंच में कई परिवर्तन होने लगे अब रंगकर्मी के पास दृश्य विन्यास, प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि व्यवस्था, वस्त्र विन्यास आदि का ज्ञान से प्रस्तुति और अधिक प्रभावी होने लगी। कल्पनामूलक नाट्य रूप धीरे–धीरे उभर कर सामने आने लगे, नाटककार और निर्देशकों के माध्यम से जटिल मानवीय अनुभवों को अनेक स्तर पर संप्रेषित करना आसान होने लगा। इस प्रक्रिया में जो नवीन शैलियां सामने आ रही थी वे किसी न किसी प्रकार से संपूर्ण रंग या टोटल थियेटर की शैलियां थी। ये शैलियां कम खर्चीली तो होती थी, साथ ही इनमें सूक्ष्मता और गहराई के साथ दर्शकों के लिये आकर्षण और मनोरंजन के तत्व भी भरपूर मात्रा में उपलब्ध थे इस शैली में गीत, नृत्य, दृश्य विन्यास, संगीत, अभिनय आदि विविध कलाओं का समावेश था।

यह नवीन रंगकला ऐसी थी, जिसमें नाट्यानुभव यथार्थ की बाहरी अनुकृति से नहीं बल्कि अंतर से विकसित होती हुई परिलक्षित होती है।

हिन्दी रंगमंच में हबीब तनवीर द्वारा मृच्छकटिक कावालम नारायण पणिकर द्वारा हिन्दी में उरूभंग और मत्तविलास ब.व. कारन्त द्वारा भोपाल के रंगमंडल में मालविकाग्निमित्र आदि प्रस्तुतियों ने भारतीय रंगकर्म का जैसे मिजाज ही बदल दिया। संभवतः अनेक शताब्दियों के बाद एक बार फिर संस्कृत और पारंपरिक रंगकर्म के साथ इस लगातार बढतें हुए साक्षात्कार के फलस्वरूप एक ऐसी नई समग्त भारतीय नाट्य शैली हमारे सामनें आ रही है जो अपनी स्थानीय रंगतों के साथ देश भर के दर्शकों को सार्थक नाट्यानुभूति के साथ आनन्दित करेगी। इस बदले हुए परिवेश का नाट्ककारों के सृजनशील मानसिकता पर भी असर पड़ा, नाटककार अपने आस–पास की समस्याओं और चुनौतियों को नये–नये प्रयोगों के माध्यम से सामने लाने लगे। इस समय हमें नाटककारों के दो वर्ग दिखाई पड़ते हैं, पहले वर्ग में वे नाटककर आते हैं जो पहले से अतीत गौरव, देश प्रेम एवं विविध सामाजिक समस्याओं पर आधारित नाटक लिखते आ रहे थे। इस वर्ग में सेठ गोविन्द दास, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद राजकुमार वर्मा, अश्क, भट्ट आदि का नाम लिया जा सकता है। दूसरे वर्ग में वे नाटककार आते हैं, जो नाट्य साहित्य में सर्वथा नवीन हस्ताक्षरों के रूप में जाने गये जैसे मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, राकेश बख्शी, विनोद रस्तोगी, मुद्राराक्षस, बृजमोहन शाह, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भटनागर आदि। इन नाटककारों ने परंपरागत मूल्यों को आँखे मूंद कर स्वीकारने की अपेक्षा स्थितियों का सही आंकलन कर जटिल संवेदनाओं को परख कर वर्तमान परिवेश को ध्यान में रखते हुए अपनी लेखनी को आगे बढ़ाया। डॉ. सिम्मी गुप्त ने लिखा ''इन नाटककारों ने युग की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर ऐसे नाटकों की रचना की जो प्रत्यक्षतः अप्रत्यक्षतः साम्यवाद तथा विश्वबंधुत्व का संदेश देते हैं।''

इस काल में जो नाटक मंचित होकर विशेष चर्चित हुए उनमें मोहन राकेश का 'आधे–अधूरे' लक्ष्मीनारायण लाल का अभिमन्यु, व्यक्तिगत, सुरेन्द्र वर्मा का सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, मणिमधुकर का रसगंधर्व, दुलारीबाई, सुशील कुमार सिंह का सिंहासन खाली है, नागपाश, ज्ञानदेव अग्निहोत्री का नेफा की एक शाम, शुतुरमुर्ग, वृजमोहन शाह का त्रिशंकु, युद्धमन, शंक शेष का फंदी, एक और द्रोणाचार्य, गिरिराज किशोर का प्रजा ही रहने दो, मुद्राराक्षस का योर्स फेथफुली, दयाप्रकाश सिंह का कथा एक कंस की, नरेन्द्र कोहली का शम्बुक की हत्या आदि प्रमुख है।

हमारा नाटक और रंगमंच जिन परिस्थितियों में विकास हो रहा था उन्हें देखते हुए लगता है कि अब रंगमंच संबंधी चिंतन में स्पष्टता और प्रखरता आने लगी। देश में रंगमंचीय प्रदर्शनों की संख्या और गति बढ़ने के साथ–साथ दैनिक, साप्ताहिक तथा अन्य समाचार पत्रों में उनके बारे में चर्चा और समीक्षा पहले से अधिक होने लगी है। नाट्य समीक्षा का उद्देश्य, स्वरूप और मापदण्डों का सवाल अब केवल किताब तक ही सीमित नहीं है। रंगमंचीय कार्यकलाप की कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में रंगमंच के स्वरूप का सवाल अब महत्वपूर्ण होने लगा, देश भर में हर भाषा क्षेत्र में रंगमंच और नाटक की ओर पहले से ज्यादा लोगों का ध्यान जा रहा था और सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भों में उसका महत्व तेजी से बढ़ता जा रहा था। इस समय के समीक्षों ने रंगमंच को एक नई दिशा दी। इस रंगमंचीय आंदोलन को बढ़ावा देने में समीक्षकों की बड़ी भारी जिम्मेदारी होती है। एक तरह से नाट्य समीक्षकों की यह जिम्मेदारी हर समय, हर देश में, हर रंगमंच के लिए रहती है।

डॉ. नेमीचन्द जैन ने कहा है ''हिन्दी क्षेत्र में तो ऐसा अक्सर लगता है कि नाटक दर्शकों के लिए नहीं, रंगकर्मियों के लिए ही होते हैं। नाटक खेलने वाले, देखने वाले, उनके बारे में लिखने कहने वाले, करीब–करीब एक छोटे से बंद समुदाय के लोग हैं, आपस में ही एक दूसरे को भला–बुरा कहते सुनते रहते हैं।''

नाट्य लेखन और नाट्य प्रदर्शन को व्यापक सृजनात्मक लेखन तथा अभिनय और रंगशिल्प के स्तर पर ऐसे नाट्य रूपों से जोड़े जो आज की जिन्दगी के अंतर्विरोध और तनाव को तो अभिव्यक्त करें। साथ ही आधुनिक और समकालीन होने के साथ–साथ अपने पारंपरिक अभिव्यक्ति रूपों से जुड़ कर व्यापक दर्शक समुदाय को प्रभावित कर सकें। रंगकर्मी के सामने हमारी रंगमंच परंपरा के तीनों स्तर संस्कृत नाट्य, लोक नाट्य और पश्चिमी रंगमंच उपस्थित है, रंगकर्मी इन तीनों स्तर के रंगमंच का सही ढंग से प्रयोग करे के वर्तमान परिवेश के साथ जोड़कर सार्थक भूमिका निभा रहे थे।

इस काल में जहां निर्देशक अपने नाटकों में नये–नये प्रयोग कर रहा था उसके साथ लेखन में भी प्रयोग हो रहे थे। नाटककारों ने नये–नये कथ्य, शैली और शिल्प से युक्त नाटक लिखे, हिन्दी रंगमंच सही मायने में इन वर्षों में हिन्दी नाटकों का रंगमंच रहा, नाटककारों ने हिन्दी रंगलेखन को नये–नये अनुभवों और प्रयोगों से समृद्ध किया।

लोक–नाट्य शैली के प्रयोग से और मंच के सरलीकरण से नाटक की व्यापकता को बल मिला है, नये नाटकों के द्वारा पश्चिम भक्तिवादी दर्शन भी प्रकाश में आया चलचित्रों की नग्नता और अस्वाभाविकता ने भी भारतीय रंगमंच को आगे बढ़ाया हास्य और व्यंग्य तथा व्यावहारिक भाषा को नाटक में स्थान मिला, वैज्ञानिक प्रगति से मंच समृद्ध हुआ ध्वनि, प्रकाश, संयोजन तथा प्रतीकात्मकता से अभिव्यक्ति की क्षमता बढ़ी, कुछ नाटकों पर फिल्म फार्मूले का प्रभाव पड़ा, कथ्य के स्थान पर शिल्प की और अधिक ध्यान दिया गया जिससे नाट्य शिल्प की दिशा में नवीनता आई। आधुनिक नाटकों में जनवादी नाटकों की परम्परा भी दिखाई पड़ती है। यह नाट्य धारा साम्यवाद के प्रकाश में भारतीय ग्राम्य जीवन का स्तर ऊँचा करने के उद्देश्य से जन्मी। जनवादी नाट्य क्षेत्र में योगदान देने वालों की संख्या उत्तरोतर बढ़ती ही जा रही है, इनमें यशपाल, भीष्म साहनी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, हबीब तनवीर आदि के नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं।

हबीब तनवीर का आगरा बाजार, बहादुर कलारित रंगमंची दृष्टि से प्रसिद्ध नाटक है, इनका मंचन विदेशों में भी हो चुका है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना बकरी नाटक भी प्रतिनिधि नाटक बन गया है। भीष्म साहनी के हानूष (1977) और कबीरा खड़ा बाजार में (1981) अभिव्यंजना रूढ़ि से मुक्त जनवादी दृष्टि से लिखे गये नाटकों में प्रमुख स्थान रखते हैं। इन नाटकों का प्रदर्शन देश के छोटे–बड़े शहर में मंच हुआ ओर लोगों को अत्यधिक प्रभावित भी किया। नाटकों में एक और प्रयोग सामने आया गीति नाटक, यह हिन्दी में आधुनिक नाटक विधा है इस विधा में निम्न लेखकों के नाटक सामने आये, दिनकर जी का नाटक 'मगध महिमा' पंत जी का नाटक रजत शिखर और उत्तरशती, फूलों का देश, शुभ पुरूष, विद्युत वशना, शरत चेतना, शिल्पी, ध्वंशशेष, अप्सरा भगवती, चरण वर्मा का कर्ण महाकाल, द्रौपदी, धर्मवीर भारती का अंधायुग, निराला का पंचवटी प्रसंग, गिरिजाकुमार का इन्दुमति, सिद्धनाथ का केलि, सृष्टि की सांझ, विकलांगों का देश आदि प्रसिद्ध है।

अंधायुग में गद्य और पद्य के मध्यम से उचित संगीत की परिकल्पना की गई है। जिसका नाटक में अपना महत्व है, गीति नाट्य को जो प्रायः काव्यात्मक भूमियों पर फैल रहा था, गंभीर वैचारिक माध्यम बनाने में इस कृति का महत्व है। अंधायुग का निर्देशन इब्राहिम अल्काजी ने किया तो इस नाटक की तरफ ध्यान गया और उसके बाद इसका मंच पूरे देश में किया गया, साथ ही इस नाटक के मंचन में नये–नये प्रयोग नाट्य निर्देशक ने अपने अपने तरीके से किया। नाटकों में इन प्रयोग से रंगमंच को नई दिशा मिल रही थी, नाट्य लेखक भी जहाँ नये–नये प्रयोग कर रहा था वही निर्देशक भी, जो नाटक नाट्यशाला में मंचन हो रहे थे इस सीमा को तोड़कर सड़कों फुटपाथों, नुक्कड़ों, आंगन, गैरेज, छत की ओर उन्मुख हो रहा था। सन् 1974 में कलकत्ता की रंग संस्था 'अनामिका' द्वारा आयोजित नाट्य महोत्सव में नाट्य प्रदर्शन मंच से लेकर केंटीन तथा स्वीमिंग पुल तक में किये गये। टोटल थियेटर की अवधारणा जोर पकड़ने लगी है। थियेटर छोड़कर सड़क पर आया रंगकर्मी, रंगकर्म को जारी रखने के लिये नये–नये आयाम खोजने लगा इसी का परिणाम था कि कविता, कहानी एवं उपन्यासों के नाट्य रूपांतर किये गये तथा उनके सफल मंचन हुए। रंगकर्म के संदर्भ में कहानी का मंचन तो जैसे एक नई विधा बन गई नुक्कड़ नाटकों की बढ़ती हुई लोकप्रियता ने भी रंग आंदोलन की गति तेज कर दी थी।

नाट्य निर्देशक अपने नाटकों में विश्वव्यापी जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में नाटक रंगमंचों पर प्रदर्शित कर रहे थे। आधुनिक नाटककार चरित्र सृष्टि के नये–नये रंग तकनीक इस्तेमाल करने लगे। दृश्य बंध विहीन नव मंच कलात्मक रंग बिरंगे प्रकाश के माध्यम से दृश्य संचालन, संगीत ध्वनियों पर अवलंबित रंग प्रस्तुति आकर्षक रूपसज्जा, वस्त्रसज्जा, सभी में नव प्रयोग किये जा रहे थे। नाटककार और निर्देशक प्रयोगधर्मी प्रवृत्तियों की सहायता से ही रंगमंच को श्रेयस्कर ऊँचाई पर पहुंचाने में कामयाब हो गये थे निर्देशक दृश्य विन्यास पर अधिक ध्यान देने लगा, दृश्य विन्यास को भी नाट्य सृजन का अनिवार्य अंग के रूप में जानने लगे। पहले के नाटक कई दृश्यों वाले होते थे। इन्हें प्रस्तुत को करने के लिए कई–कई परदों की जरूरत होती थी। नाटककारों में रंगमंचीय चेतना विकसित हुई और अनेक दृश्य वाले नाटकों की प्रतीकात्मक व्यवस्था के बिना यह काम बड़ा कठिन था। दृश्य–बंध निर्माण करने की यह कला आजादी के बाद रंगमंच की कलात्मक उपलब्धि का अच्छा निदर्शन है।

स्वतंत्रता के बाद धीरे–धीरे रंगमंच में बहुत सारे परिवर्तन आये नाटककार हो या नाटक से जुड़े सभी जैसे निर्देशक, अभिनेता, संगीत निर्देशक वस्त्र–विन्यासकर्ता, दृश्य–विन्यासकर्ता, रूप–सज्जा आदि में अपने–आप को वर्तमान समय के अनुसार परिवर्तन करना शुरू कर दिया उसका प्रभाव नाटकों में दिखाई देता था फिल्मों का असर नाटक पर भी पड़ने लगा निर्देशक की कल्पना का बहुत–अधिक विकास हो गया था अब मंच पर कुछी भी ऐसा नहीं है जो नहीं दिखाया जा सकता है। आधुनिक युग तकनीकी का युग है नाटकों में भी तकनीकी का बहुत अधिक प्रयोग होने लग गया है। स्वतंत्रता के बाद यही महत्वपूर्ण परिर्वतन था। जो आज तक निरन्तर चलात आ रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1, हिन्दी नाटकःआज तक डॉ.वीणा, गौतम
2, समकाली हिन्दी नाट्य परिदृश्य डॉ.श्रीमती परवीन अख्तर
3, चिट्ठी पत्री,भाग 2 पृ.–207
4, समकाली हिन्दी नाट्य परिदृश्य डॉ. श्रीमती परवीन अख्तर
5, रंगमंचः कला और दृष्टि गोविन्द चातक

LBP PUBLICATION